साहित्यशास्त्र में गुण विवेचन

अंकुर माहेश्वरी संस्कृत, विक्रम वि.वि. उज्जैन(म.प्र.)भारत

शोध सार– गुण शब्द का धर्म, स्वभाव, उत्कर्षता, श्रेष्ठता, रस्सी, धनुष डोरी, सन्धि–विग्रह–यान आदि राजनीतिक, सत–रज–तम रूप आत्मिक, संज्ञा–सन्धि रूप व्याकरणिक, शब्दार्थ आदि के प्रकार रूप में प्रयोग किया जाता है। साहित्यशास्त्र में माधुर्य, ओज और प्रसाद रूप से गुण पाठकों व श्रोताओं के मन मे आह्लादक, उद्दीपक व व्यापक रूप होता है। प्रकृत शोध पत्र में गुण के विभिन्न स्थानों में अर्थ को बताते हुए, काव्यशास्त्र में तीनों गुणों की व्यापार प्रक्रिया को प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

गुण् धातु से अच् प्रत्यय करने पर पुल्लिंग में गुण शब्द निष्पन्न होता है। गुण शब्द का प्रयोग काव्य से भिन्न भी कई स्थानों पर और अर्थों में होता है। सामान्य अर्थ, किसी व्यक्ति के धर्म, स्वभाव या विशेषता, विशिष्टता, उत्कर्षता, श्रेष्ठता आदि अर्थों में लिया जाता है। आचार्य भर्तृहरि ने गुण शब्द का प्रयोग अच्छे या बुरे कार्यों के सम्बन्ध में किया–

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ,

परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।

अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते–

र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः।।[1]

अर्थात् अच्छा या बुरा कार्य करने से पहले सुधी पण्डित पुरुष को उसका परिणाम विचार कर लेना चाहिए, क्योंकि अत्यन्त शीघ्रता में किये गये कर्मों का परिणाम जीवनपर्यन्त शूल के समान दाहक होता है, अतः कैसा भी कार्य हो पहले उसके गुण–अवगुण जाने।

गुण शब्द का प्रयोग प्रभाव, परिणाम अथवा फल के रूप में तथा दोषों के विलोम रूप में भी होता है।

गुणागुणज्ञेषु गुणा भवन्ति, ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।[2]

अर्थात् विद्या, विनयादि गुण अच्छे गुणी व्यक्तियों के समीप सद्गुण बन जाते हैं, किन्तु वे गुण रहित का आश्रय प्राप्त करके दोष रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। उत्तररामचरित नाटक में गुण शब्द का प्रयोग दाक्षिण्यादि[3], रूप गुण अथवा सौन्दर्य, गुणादि अर्थों में किया गया है। अमरकोश में गुण शब्द का प्रयोग इस प्रकार दिखाया–

विशेषः कालिकोऽवस्था, गुणाः सत्त्वं रजस्तमः।। कालवर्ग(1/273)

षड्गुणाः शक्तयस्तिस्त्रः प्रभावोत्साहमन्त्रजाः।। क्षत्रियवर्ग(2/1505)

लस्तकस्तु धनुर्मध्यं मौर्वीज्या शिंजिनी गुणाः।। क्षत्रियवर्ग(2/1637)

आरालिकाः आन्धसिकाः सूदा औदनिका गुणाः।। वैश्यवर्ग(2/1762)

शुल्वं वराटकं स्त्रीतु रज्जुस्त्रिषु वटी गुणः।। शुद्रवर्ग(2/1982)

मौर्व्यां द्रव्याश्रिते सत्त्वशौर्यसन्ध्यादिके गुणः।। नानार्थवर्ग(3/2428)[4]

व्याकरणशास्त्र में गुण एक संज्ञा व सन्धि को कहा गया।[5]

शब्दार्थ के चार प्रकारों में भी जाति, क्रिया, द्रव्य के साथ गुण को गिना जाता है।[6] सांख्य दर्शन में गुणों को सत्त्व, रज और तम रूप कहा गया।[7]

साहित्यशास्त्र में काव्य समालोचना के प्रारम्भिक काल से ही काव्यगुणों का विवेचन होता रहा हैं–

1. भोजराज – अदोषं गुणवद्काव्यं अलंकारैरलंकृतम्।
2. वामन – काव्यशब्दोऽयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते।
3. वाग्भट – शब्दार्थौं निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालंकारौ काव्यम्।
4. हेमचन्द्र – अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्।
5. जयदेव – निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषिता।
6. विद्यानाथ – गुणालंकारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ।
   गद्य–पद्योभयमयं काव्यं काव्यविदो विदुः।।
7. अग्निपुराण – इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।
   काव्यं स्फुटदलंकारं गुणवद्दोषवर्जितम्।।
8. मम्मट – तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।।

माधुर्यगुण आह्लादरूप है और यह द्रुति का कारण होता है। द्रुति का अभिप्राय है, सहृदय के हृदय का द्रवीभूत हो जाना। यह माधुर्य गुण संभोग श्रृंगार में, करुण में, विप्रलम्भ में और शान्त रस में विद्यमान रहता है। इन रसों में भी इस गुण का क्रमशः उत्तरोत्तर में अतिशय होता है। सहृदयजनों का मन इसके प्रति सबसे अधिक आकर्षित होता है।

ओजगुण दीप्ति को उत्पन्न करता है। इसका स्वरूप चित्त की अत्यधिक विस्तृति है। यह वीर, बीभत्स और रौद्र रसों में विद्यमान रहता है और क्रमशः उत्तरोत्तर में इसका अतिशय होता है।

प्रसाद, जैसे अग्नि सूखे ईधन को व्याप्त कर लेती है और जल स्वच्छ वस्त्र को व्याप्त कर लेता है, उसी प्रकार प्रसाद गुण चित्त को सहसा व्याप्त कर लेता है। यह सभी रसों और सभी रचनाओं में व्याप्त रहता है।

आचार्य आनन्दवर्धन ने विशेष प्रकार के वर्ण समास संघटना तथा प्रबन्ध को विशेष रसों की अभिव्यंजकता का हेतु बताया था। परवर्ती आचार्यों ने इन तत्त्वों को गुणों की अभिव्यंजना के हेतुओं के रूप में प्रस्तुत किया। गुणों के रस धर्म होने के कारण, वर्ण आदि हेतुओं से अभिव्यक्त गुण, रसों की अभिव्यक्ति करने वाले होगें। अतः इन आचार्यों द्वारा वर्णादि को गुणों की अभिव्यंजकता के हेतु रूप में प्रस्तुत करना समीचीन माना।

आचार्यों का यह भी विचार है कि यद्यपि विशिष्ट वर्ण, समास तथा रचना का प्रयोग विशिष्ट गुणों की अभिव्यक्ति करने वाला होता है– ऐसा नियम है तथापि यह नियम ऐकान्तिक नहीं है। वक्ता, वाच्य और प्रबन्ध की दृष्टि से इनका प्रयोग अन्य प्रकार से भी किया जा सकता है। अब क्रमशः प्रत्येक गुण के अभिव्यंजक वर्ण आदि का नीचे उल्लेख किया जाता है–

1. माधुर्य– गुणों का नियमन अक्षरों, समास तथा घटना के द्वारा होता है। माधुर्य गुण में ट, ठ, ड तथा ढ से रहित ककार से लेकर मकार तक वर्ण अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण के साथ इस प्रकार संयुक्त हो जाते है कि पंचम वर्ण पहिले आता है और स्पर्श वर्ण पीछे। रेफ तथा लकार ह्रस्व स्वर से युक्त रहते है। समास का सर्वथा अभाव

रहता है या छोटा समास होता है। रचना मधुर होती है। इस गुण में चित्त एकदम पिघल जाता है। करुण, विप्रलम्भ तथा शान्तरस में माधुर्य क्रम से अधिक प्रभावशाली होता है।

2. ओजगुण– वर्ग के प्रथम वर्ण का तृतीय से और द्वितीय का चतुर्थ योग, रेफ के साथ किसी वर्ण का योग, किसी वर्ण का उसी वर्ण के साथ योग तथा ट, ठ, ड, ढ, श तथा ष का प्रयोग, दीर्घ समास तथा विकट रचना आदि 'ओज' गुण के अभिव्यंजक होते है। भूषण कवि के कवित्त तथा भवभूति के पद्य इसके उत्कृष्ट उदाहरण है। ओजगुण चित्त के विस्तार का जनक होता है। वह वीर, बीभत्स तथा रौद्र में क्रमशः अधिकता से विद्यमान रहता है।

3. प्रसाद गुण– जब काव्य में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाये, जो सुनते ही श्रोता के चित्त पर चढ जाये तथा समझ में आ जाये, तब वहां ''प्रसाद गुण'' की स्थिति होती है। इसकी स्थिति सब रसों में तथा सब रचनाओं में होती है। माधुर्य तथा ओज के समान यह किसी रस विशेष के साथ सम्बद्ध नहीं रहता, प्रत्युत सब रसों का तथा सब रचनाओं का साधारण धर्म होने वाला गुण है। इनका मुख्य रूप से रस के साथ ही सम्बन्ध होता है जो काव्य की आत्मा होता है। गौण रीति से इनका सम्बन्ध शब्द तथा अर्थ के साथ ही माना जाता है।

सारांश रूप में माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों के सम्बन्ध में एक शंका होती है कि इन गुणों को जब रस का धर्म कहा गया है तो इनकों शब्द गुण क्यों कहा गया है। समाधान यह है कि जिस प्रकार शौर्य आदि गुण आत्मा के धर्म होने पर भी उपचार से शरीर के मान लिए जाते है, उसी प्रकार माधुर्य आदि गुण रस के धर्म होने पर भी उपचार से शब्द गुण कहे जाते है।

एषां शब्दगुणत्वं च गुणवृत्योच्यते बुधैः।[8]

सन्दर्भ :–

1. नीतिशतक, भर्तृहरि,100
2. हितोपदेश, नारायणपण्डित, मित्रलाभ
3. उत्तररामचरित, भवभूति, 6/31
4. अमरकोश, अमर
5. अदेङ्गुणः। आद्गुणः। अष्टाध्यायी, पाणिनि
6. महाभाष्य, पतंजलि, पस्पशाह्निक
7. सांख्यकारिका, ईश्वरकृष्ण, 13
8. साहित्यदर्पण, विश्वनाथकविराज, 8/9